कल्याणार्थ साधु व श्रावक के व्रत अंगीकार कर रहे थे। उनकी सभा में एक भक्त सुरादेव भी था, जो अपनी धर्मपत्नी धन्या के साथ प्रभु महावीर के वचनामृत सुन रहा था। प्रभु महावीर के प्रति उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। वह १८ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का स्वामी था। उसके ६ गोकुल थे। प्रभु महावीर के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने प्रभु महावीर से श्रावक के १२ व्रत स्वीकार किए।

चुलनीपिता श्रावक की तरह सुरादेव भी धर्म-आराधना में लग गया। एक रात्रि जब वह धर्म-आराधना पौषधशाला में कर रहा था, तो एक मिथ्यात्वी देव आया। आते ही उसने धमकी दी- "हे मृत्यु को चाहने वाले! इन शील आदि व्रतों को भंग कर दो। अगर तू ऐसा नहीं करेगा, तो मैं तुम्हारे तीन पुत्रों को मारकर खण्ड-खण्ड करूंगा। फिर उन्हें कड़ाही में उबालकर उनके रक्त-मांस से तुम्हारे शरीर को सिंचित करूंगा।" फिर देवता ने तीनों पुत्रों को मार दिया, पर सुरादेव श्रावक देवता की धमकी के आगे नहीं झुका। वह धर्म में स्थिर रहा। देवता ने उसे चौथी बार धमकी देते हुए कहा-"मैं तुम्हारे शरीर में श्वास, कुष्ट आदि रोग पैदा करूंगा जिनके प्रभाव से तू जल्द मृत्यु को प्राप्त होगा।"

अब सुरादेव घबरा गया क्योंकि उसने अपने पुत्रों की हत्या आंखों के सामने होती देखी थी। वह अंधेरे में उस दुष्ट देव को पकड़ने दौड़ा। देव अन्तर्धान हो गया। हाथ में खम्भे को पकड़कर चिल्लाने लगा।

ऐसे समय में उसकी धर्मपत्नी धन्या ने उसे धर्म में पुनः स्थापित किया। उसे उसकी पत्नी ने बताया कि "आपके तीन पुत्र सुरक्षित हैं। तुमने धर्म-साधना भंग की है। इसका प्रायश्चित्त ग्रहण करो।"

पत्नी का सुझाव उसने तत्काल मान लिया, प्रायश्चित ग्रहण किया। वह लम्बे समय तक श्रावक धर्म की आराधना करता हुआ आत्मा को निर्मल बनाता गया। जीवन के अन्तिम क्षणों में उसने आलोचना, प्रायश्चित्त स्वीकार किया। आयुष्य कर्म के पूरा होने पर वह सौधर्म देवलोक में देव बना।[८]

पुद्गल परिव्राजक द्वारा श्रमण दीक्षा

वाराणसी से प्रभु महावीर आलंभिया नगरी के शंखवन उद्यान पधारे। यहां के राजा का नाम भी जितशत्रु था। उसने भी प्रभु महावीर का उपदेश श्रद्धा से सुना। इसी वन के नजदीक पुद्गल परिव्राजक रहता था, जो चारों वेदों व ब्राह्मण ग्रन्थों का गम्भीर ज्ञाता था। निरन्तर वह तप के साथ सूर्य के सम्मुख ऊर्ध्वबाहु खड़ा होकर, आतापना लेता था। इसी तप के प्रभाव से उसे विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह ब्रह्मलोक तक के देवों की गति स्थिति को प्रत्यक्ष निहारने लगा।[९]

उसे लगा कि उसे आत्म-ज्ञान हो गया है। उसने विचारा कि मैं देख रहा हूं कि देवों की कम से कम आयु १०,००० वर्ष होती है। ज्यादा से ज्यादा १० सागरोपम। इसके आगे न देव हैं न देवलोक। पुद्गल परिव्राजक ने अपने धार्मिक उपकरण ग्रहण किए। वह आलंभिया के चौक बाजारों में अपनी मान्यता का प्रचार करने लगा। कई लोग उसके ज्ञान के प्रशंसक थे। कई शंकाएं उठाते थे।

गणधर गौतम आलंभिया नगरी में भिक्षार्थ घूम रहे थे। पुद्गल के ज्ञान व सिद्धान्त की चर्चा उनके कानों में पहुंची। भिक्षा से आते ही उन्होंने अपने गुरू प्रभु महावीर से पुद्गल की सारी बात कह डाली। प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए कहा- "देवानुप्रिय! पुद्गल का कथन उचित नहीं है, देवों की आयु कम से कम १० हजार वर्ष, ज्यादा से ज्यादा ३३ सागरोपम है।"

प्रभु महावीर के इस कथन को सारी धर्मसभा ने सुना। लोगों ने प्रभु महावीर के ज्ञान की प्रशंसा की।

भगवान महावीर की यह बात पुद्गल परिव्राजक के कानों में पहुंची। वह पहले से ही जानता था कि

महावीर सर्वज्ञ, जिन, अरिहंत, केवलज्ञानी, अन्तिम तीर्थंकर हैं, महान् तपस्वी हैं, उसे अपने ज्ञान पर विश्वास न रहा। वह ज्यों-ज्यों चिन्तन करता गया, उसका विभंगज्ञान लुप्त होता गया। वह प्रभु महावीर के समवसरण में पहुंचा। विधियुक्त वन्दना की और उचित स्थान पर बैठ गया।

भगवान महावीर के प्रवचन को सुनकर उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा उत्पन्न हो गई। वह श्रमण बन गया। फिर भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभु महावीर के निर्देशन व आज्ञा में तप द्वारा आत्मा को पवित्र बनाता हुआ अन्तिम समय मोक्ष में चला गया। जैन परम्परा में मोक्ष किसी लिंग, जाति, समुदाय तक सीमित नहीं है। हर साधक देश, कुल, लिंग के भेद से परे होकर उसे प्राप्त कर सकता है।[४०]

चुल्लशतक द्वारा श्रावक धर्म-आराधना

उस समय आलंभिया नगरी में चुल्लशतक और उसकी धर्मपत्नी श्यामा रहते थे। इनके पास १४ करोड़ों की स्वर्ण-मुद्राएं और ६०,००० गाओं के ६ गोकुल थे। प्रभु महावीर से इन्होंने श्रावक के व्रत स्वीकार किए।

एक रात्रि चुल्लशतक श्रावक पौषधशाला में बैठा धर्म-आराधना कर रहा था। एक देव रात्रि के समय प्रकट हुआ। उसने तीन बार धमकी देते हुए कहा-अगर तू इस भगवान महावीर के श्रावक धर्म को नहीं छोड़ेगा, तो मैं तुम्हारे पुत्रों को मारकर उबालूंगा और उनके रक्त-मांस से तुम्हारे शरीर को सिंचित करूंगा।''

जब श्रावक अपनी साधना में स्थिर रहा तो देव ने अपनी माया से यह काम भी कर डाला। चुल्लशतक स्थिर रहा। देव ने पुनः धमकी देते हुए कहा- ''अगर तू अभी भी नहीं मानता, तो मैं तुम्हारा धन चौराहे में फेंक दूंगा जिस कारण तू दरिद्री हो जाएगा। भिखारी बनकर दर-दर की ठोकरें खाएगा।''

इस बार चुल्लशतक घबरा गया। उसने वही चिन्तन किया जो पूर्व कथित श्रावकों ने किया था। उसने देव को पकड़ना चाहा, पर देव-माया सिमट चुकी थी। हाथ में खम्भा आया। पत्नी श्यामा ने यहां उसे धर्म में स्थिर कर, उसकी भूल का प्रायश्चित करने को कहा। पत्नी के कहे अनुसार उसने शास्त्र की विधि अनुसार दण्ड प्रायश्चित ग्रहण किया और पुनः धर्म में स्थित हो गया।

जीवन के अन्तिम क्षणों में वह आयुष्य पूर्ण कर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।[४१] चुल्लशतक के साथ अनेक लोगों ने श्रावक धर्म के व्रत स्वीकार किए। आलभिया में धर्म-प्रचार करने के पश्चात् गांव-गांव घूमते पुनः राजगृही नगरी में पधारे। वहां प्रभु महावीर गुणशील चैत्य में पधारे। राजा श्रेणिक व रानी चेलना दर्शन करने आए। यहां अन्तकृद्दशा, वर्ग ७, अ.२ में वर्णित मकाई, विक्रम, अर्जुन और काश्यप ने दीक्षा अंगीकार की।

गाथापति मकाई राज्यगृह का निवासी था। प्रभु महावीर के उपदेश से प्रभावित हो इसने पुत्र को घर-भार सौंपा। १६ वर्ष तक साधु-जीवन का पालन किया। मकाई मुनि ने ग्यारह अंगों के अध्ययन के साथ-साथ गुणरत्न संवत्सर तप किया। केवलज्ञान प्राप्त कर विपुलांचल पर्वत पर मोक्ष पधारे। राजगृही निवासी विक्रम ने भी इसी प्रकार के साधु-जीवन ग्रहण किया। स्वाध्याय किया। गुणरत्न संवत्सर तप किया। अन्त समय विपुलांचल पर्वत से मोक्ष गमन किया।

अर्जुनमाली की दीक्षा

अर्जुनमाली की दीक्षा का प्रकरण जैन इतिहास का महत्त्वपूर्ण प्रकरण है।

इन्हीं दिनों राजगृह में महत्वपूर्ण घटना घटी। अर्जुन नाम का एक माली यहां रहता था। वह रोजाना अपनी सुन्दर पत्नी के साथ बगीचे में जाता। वह फूल मालाएं तैयार करता फिर उसके अधीन कर्मचारी उन मालाओं को बाजार में जाकर बेच आते।

उस बगीचे में मुद्गरपाणि यक्ष का मन्दिर था। अर्जुन बचपन से ही उसका भक्त था। वह हर सुबह स्नान कर पत्नी के साथ उस यक्ष की पूजा, अर्चना, वन्दना करता। उसी राजगृही नगरी में ललित नाम का स्वछन्द, आवारा, क्रूर और व्यभिचारी युवक रहता था। उसके मित्र उसी की तरह उसका अनुकरण करते थे। शहर में इन लोगों का आतंक था। यह लोग ललितगोष्ठी नाम से प्रसिद्ध थे, क्योंकि ललित इनका मुखिया था।

एक दिन अर्जुनमाली फूलों को तोड़ने बाग में पहुंचा। उस दिन दुर्भाग्यवश यह छह बदमाश उस मन्दिर में आकर छिप गए, जहां अर्जुनमाली रोजाना पूजा के लिए आता था। ज्यों ही अर्जुनमाली ने सिर झुकाया, उन छह व्यक्तियों ने अर्जुनमाली को बांध दिया।

फिर उसके सामने सभी व्यक्यिों ने बारी-बारी से अर्जुनमाली की पत्नी बंधुमति के साथ दुष्कर्म किया। अर्जुनमाली को अपनी पत्नी व देवता, दोनों पर गुस्सा आ गया। वह सोचने लगा- यह कैसा देव है जो अपने भक्त की रक्षा नहीं कर पा रहा। इसी के सामने, इसी के मन्दिर में मुझे बांधा गया। फिर छह व्यक्तियों ने मेरी स्त्री से बारी-बारी कुकर्म किया है। यह तो पत्थर की मूर्ति है। मैं तो बेकार इसकी पूजा बचपन से करता आ रहा हूं। इसने मुझे क्या लाभ दिया है?''

भक्त की पुकार कभी खाली नहीं जाती। यही अर्जुनमाली के साथ हुआ। वह यक्ष अर्जुनमाली के शरीर में प्रवेश कर गया। उसके बंधन टूट गए। उसने छह पुरुषों और बंधुमति को वहीं मार दिया। अब अर्जुन के शरीर में अर्जुन नहीं रहा था। उसके शरीर पर मुद्गरपाणी का अधिकार था। अर्जुन देवता का भारी मुद्गर उठाए फिरता छह पुरुषों और एक महिला की हत्या करना उसका रोजाना का क्रम बन गया।

अर्जुन के भयंकर उपद्रव से राजा और प्रजा में हाहाकार मच गई। सारे राजगृह में भयंकर आतंक छा गया। राजा ने उसे पकड़ने के अनेक प्रयास किए, पर सफलता हाथ न लगी। ५ महीने १३ दिन में उसने १,१४१ मनुष्यों का घात किया। पर इस बात का असली अर्जुन को तो पता ही नहीं था। यह काम तो देव-शक्ति अर्जुन के शरीर में रहकर कर रही थी।

आखिर राजा श्रेणिक ने नगर के द्वार बन्द करवा दिए। साथ में प्रजा को निर्देश दिया- ''कोई भी व्यक्ति, किसी भी जरूरत के लिए जंगल में न जाए। क्योंकि वहां अर्जुनमाली घूमता है जो छह पुरुषों व एक स्त्री को हर रोज मारता है।''राजा के आदेश को सारी प्रजा मानने लगी। उसी समय संसार के समस्त जीवों के आराध्य चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर राजगृह पधारे। नगर में गुप्तचरों के माध्यम से प्रभु महावीर के आगमन की सूचना मिली। राजा श्रेणिक ने इस बार प्रभु महावीर को भाव वन्दन किया क्योंकि वह भी अर्जुनमाली के आतंक से आतंकित था।

उधर राजगृह में सुदर्शन नामक श्रमणोपासक रहता था। प्रभु महावीर के आगमन का समाचार उसने भी सुना। उसने अपने माता-पिता से प्रभु महावीर के दर्शन-वन्दन की आज्ञा मांगी। माता-पिता ने उसे अर्जुन के आतंक के बारे में बताया। पर वह तनिक विचलित नहीं हुआ। नगर के द्वार खुलवाकर वह बाहर निकला। सुदर्शन को अपनी जान से प्यारे प्रभु महावीर के दर्शन थे। सुदर्शन का जीवन ही प्रभु

भक्ति का साकार उदाहरण है। वैसे भी धार्मिक व्यक्ति के मन में मौत का भय नहीं होता। फिर वह अर्जुन के भय से कैसे डरता? वह धीरे-धीरे अभय भाव से आगे बढ़ रहा था। दूर से अर्जुन ने उसे आते देखा। वह सुदर्शन की ओर लपका। सुदर्शन अपनी ओर अर्जुन को आते देखकर सागारी संथारा कर ध्यान मुद्रा में खड़ा हो गया। अर्जुन ने मुद्गर घुमाकर सुदर्शन को ललकारा, किन्तु सुदर्शन ध्यानस्थ थे।

एक ओर हिंसा शक्ति थी, दूसरी ओर अहिंसा की शक्ति। कुछ क्षण दोनों में संघर्ष चला। हिंसा व आसुरी शक्ति का प्रतीक यक्ष देव सुदर्शन की अहिंसा के कारण अर्जुन का शरीर छोड़ भाग गया। यक्ष के निकलते ही अर्जुन धड़ाम से भूमि पर गिरा। उस समय तो वह मूर्छित हो गया। ध्यान से निवृत्त हो सुदर्शन ने अर्जुन को संभाला। फिर सुदर्शन ने उसे प्रतिबोध दिया।

अर्जुन ने पूछा- "देवानुप्रिय! आप कौन हैं और कहां जा रहे हैं? मैं यहां कैसे पहुंचा?"

सुदर्शन ने उत्तर दिया- "प्रिय! यक्ष का तुम्हारे शरीर में प्रवेश के कारण तू अपना स्वरूप भूल गया था। अब यक्ष निकल गया है, तू अब ठीक है। बाकी मैं अपने धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर के दर्शन करने जा रहा हूं।"

अर्जुन भी महावीर के दर्शन करने के लिए तैयार हो गया। दोनों बड़ी श्रद्धा से प्रभु महावीर के समवसरण में पहुंचे। अर्जुन के शुभ कर्म का उदय हो चुका था। उसने धर्म-उपदेश सुना। वह प्रभु महावीर के चरणों में भिक्षु बन गया। कल का चोर, हत्यारा, आतंकवादी प्रभु महावीर के धर्म-उपदेश से साधु बन चुका था।

साधु बनते ही वह बेले-बेले तप की आराधना करने लगा। पर वह ज्यों ही किसी गली, मोहल्ले में भिक्षा के लिए पहुंचता तो उसे ताड़ना, तर्जना और प्रहार सहना पड़ता। गली मुहल्ले में लोग इक्ट्ठे हो जाते, वह उस पर ताने कसते। छोटे बच्चे अर्जुन मुनि पर ईंटे बरसाते। जब भी वह पारणा के लिए भिक्षा को निकलते, लोग चिल्लाते- "कोई कहता इसने मेरी मां की हत्या की है। मेरे मित्र और स्वजनों को बिना कारण मारा है।"

उन्हें भिक्षा मिलनी दुर्लभ हो रही थी। कभी अन्न मिलता तो पानी न मिलता। पानी मिल जाता तो भोजन असंभव हो जाता। सब परीषहों को वह शांत होकर समभाव से सहते। किसी के प्रति भी क्रोध, द्वेष की भावना मन में न लाते। वह उलाहने, भर्त्सना, गालियों को सहते गए।

छह महीने तक यही क्रम चलता रहा। अर्जुनमाली ने इन परीषहों, उपसर्गों को हंसते-हंसते झेला। वह सोचते- ये लोग सत्य कहते हैं मैं पापी, हत्यारा हूं। इनके स्वजनों-मित्रों का घाती हूं। मेरे पाप का कोई दण्ड प्रायश्चित नहीं है। पहले मैंने इन्हें कष्ट दिए हैं, अब इन्हें कुछ भी कहने का अधिकार है।'

यह उपसर्ग परीषह रंग लाए। मात्र छह महीने संयम-पालन करके अर्जुन मुनि को केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त हो गया। वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गए। अब उनकी आत्मा परमात्मा बन गई। जन्म, जरा, व्याधि से मुक्त हो गए।

काश्यप की दीक्षा

राजगृह के काश्यप गाथापति ने प्रभु महावीर का धर्म-उपदेश सुन दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उत्कृष्ट तप द्वारा १६ वर्ष संयम पाला। अन्त समय में विपुलागिरि पर्वत से मोक्ष पधारे।[२]

उस समय बहुत से महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने साधु जीवन अंगीकार किया। इनमें वारत्त नामक गाथापति भी था। साधु बनते ही उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। १२ वर्षों तक संयम की उत्कृष्ट आराधना कर वह भी मोक्ष पधारे।

नन्द मणिकार द्वारा श्रावक व्रत ग्रहण करना

भगवान महावीर का यह वर्षावास राजगृह नगर में सम्पन्न हुआ।

इसमें नन्द मणिकार ने प्रभु महावीर के उपदेश को सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण किए थे। इस श्रावक की कथा इस प्रकार है-

प्रभु महावीर के समवसरण में देव ने स्वर्ग से आकर वन्दन किया। फिर उसने विभिन्न प्रकार के नाटक प्रभु महावीर के सामने किए। उस देव के साथ अनेकों देव-देवियां थीं। कुछ ही समय के पश्चात् देव ने अपनी माया समेट ली। प्रभु महावीर को पुनः वन्दन कर जाने की आज्ञा मांगी।

मगध सम्राट श्रेणिक भी प्रभु के इस समवसरण में बैठा यह सब देख रहा था। उसने जब देव के समस्त नाटकों व ऋद्धि को देखा तो दंग रह गया। प्रभु महावीर के शिष्य गणधर इन्द्रभूति से प्रश्न किया- "भंते! यह देव जो अभी-अभी आपके समक्ष अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करके गया है, वह कौन था?"

प्रभु महावीर- "गौतम! यह सौधर्म देवलोक में दुर्दर देव था। अभी-अभी वहीं स्वर्ग में उत्पन्न हुआ है। उसके अधीन ४ हजार सामानिक देव देवियों का परिवार स्वर्ग में रहता है। दुर्दरांक इसके विमान का चिन्ह है।" गणधर गौतम ने प्रभु महावीर के समक्ष जिज्ञासा रखी- "प्रभु! ऐसा कौन सा कर्म था जिसके कारण इसे यह ऋद्धि मिली। यह पूर्वभव में कौन था?"

इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु महावीर ने गणधर गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते हुए इसका विचित्र पूर्वभव बताया- "हे देवानुप्रिय! इस देव के पूर्वभव की कथा मैं तुम्हें सुनाता हूं-

इसी राजगृह नगरी में एक नन्दन मणिकार रहता था। वह हीरे, मोती, मणियों का कार्य करने के कारण प्रसिद्ध था। धन-धान्य से सम्पन्न था। एक बार मैं (भगवान महावीर) अपना धर्म-प्रचार करते हुए राजगृह नगरी में आया। वहां मेरे समवसरण में इसने श्रावक के व्रत स्वीकार किए। यह जीव अजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक बन गया।

अब यह श्रावकों के व्रत का शुद्धता से पालन करता। यह भोजन में संयम रखता। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों पर उपवास-पौषध व्रत का पालन करता। जीवन में प्रामाणिकता रखता।

पर धीरे-धीरे संत समागम न मिलने के कारण उसकी धर्म- श्रद्धा में शिथिलता आने लगी। यह सब प्रवचन सुनने व स्वाध्याय के न करने से हुआ। पर कर्म गति बड़ी विचित्र है, एक बार इसके मन में पुनः धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। इसने अपनी पौषधशाला में पौषध व्रत की धर्म-आराधना शुरू की। यह पौषध इसने तीन दिन के लिए ग्रहण किया।

दो रात्रियां ठीक गुजरीं। तीसरी रात्रि बाकी थी। दिन तो जैसे तैसे करके बीत गया। रात्रि में भयंकर गर्मी पड़ने लगी। नंद मणिकार के शरीर से पसीना आने लगा। अब उसे भूख-प्यास भी सताने लगी। प्यास के मारे उसका गला सूख गया। गले का थूक तक सूख गया।

नंद मणिकार सोचने लगा कि-'जीवन में पानी का कितना महत्व है। मेरी यह रात्रि पूर्ण हो जाए, तो सुबह उठते ही मैं राजा श्रेणिक की आज्ञा से वैभारगिरि पर्वत के पास बावड़ी बनाऊंगा। एक सुन्दर

विशाल बाग लगाऊंगा, जिसमें सार्वजनिक प्याऊ होगा।'

सुबह हुई। नंद मणिकार घर आया। पारणा करने के पश्चात् वह सीधा तुम्हारे (राजा श्रेणिक) के पास गया। राजा ने उसे वैभारगिरि के पास बावड़ी बनाने की स्वीकृति प्रदान कर दी और पुण्य-कार्य समझकर भूमि भी प्रदान की।

सेठ ने कारीगर लगाए। कुछ निश्चित समय में सुन्दर बावड़ी व बाग तैयार हो गया। योजनानुसार उसमें प्याऊ लगा। बावड़ी जो पुष्करिणी के नाम से प्रसिद्ध थी, इसका नामकरण भी उसने अपने नाम पर नन्द पुष्करिणी रखा।

इस बावड़ी के पूर्व दिशा में चित्रशाला का निर्माण कराया। दक्षिण दिशा में चिकित्सालय बनाया। उत्तर दिशा में अलंकार सभा का निर्माण किया, जहां हर थका-मांदा अपनी मालिश करवा सकता था। नंद अब पूरी तरह लोकैषणा (प्रसिद्धि) के दलदल में फंस चुका था। जब भी लोग नंद पुष्करिणी की प्रशंसा करते, तो उसका सीना अहंकार से फूल जाता। परोपकार के साथ जब लोकैषणा का भाव जुड़ जाए, तो पुण्य काय की मूल भावना समाप्त हो जाती है। यह नन्द मणिकार के साथ हुआ। अपने पुण्य कार्यों की प्रशंसा सुनते -सुनते उसका अहं बढ़ता गया। आखिर जीवन की शाम आ गई। वह बीमार पड़ा और अब उसका आयुष्य समाप्त हो चुका था। वह मर गया। मरने से पूर्व उसने कोई धर्म-आराधना नहीं की। अपने रिश्तेदारों से पुष्करिणी का ध्यान रखने को जरूर कहा।

उसे अंत समय भी अपनी बावड़ी का ध्यान रहा। वह मरकर उसी बावड़ी में मेंढ़क बना। मेंढ़क बनने के पश्चात् भी उसे अपना पूर्वभव याद रहा। वह अपनी ही बावड़ी में दुर्लभ मानव शरीर त्यागकर मेंढ़क बना था। कभी-कभी वह किनारे पर आ जाता। लोगों से अपनी यशःकीर्ति की गाथा सुनता तो इस तिर्यंच भव में भी वह प्रसन्न होता।

एक मैं पुनः राजगृही नगरी में पहुंचा। मेरा समवसरण लगा। धर्म-प्रवचन होने लगा। उधर राजा श्रेणिक चतुरंगी सेना सहित वन्दना करने आ रहे थे। यह मेंढ़क भी उस समय किनारे पर बैठा था। उसने मेरे आगमन की सूचना सुनी तो उसने पहले मुझे भाव वन्दन किया। फिर वह तालाब से बाहर आया। इसका चिंतन बदल चुका था। यह सोच रहा था कि 'इस आसक्ति के कारण मैं इस योनि में पैदा हुआ हूं। मुझे समवसरण में जाकर उपदेश सुनना चाहिए।'

इसी चिंतन के कारण यह मुख्य राजमार्ग पर आया। आते ही इसका सामना राजा श्रेणिक की चतुरंगी सेना से पड़ा। मेंढ़क ने हौसला नहीं छोड़ा। धर्म के आवेश में ज्यों ही आगे बढ़ा, तो घोड़े के पांव के नीचे आकर कुचल गया। उसने अंतिम समय धर्म-आराधना करते हुए अरिहंत सिद्ध का शरण लिया।

पूर्वभव की थोड़ी सी धर्म-श्रद्धा के कारण अब यह महान् ऋद्धि वाला देव बना है।

सो किसी भी कार्य में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। राग-द्वेष कर्म का बीज है। आसक्ति से बचने वाला जीव धर्म के मूल तत्व को पहचानता है। लोकैषणा के साथ किया गया दान-पुण्य का शुद्ध धर्म से कोई संबंध नहीं। आत्म कल्याण तो लोकैषणा के भाव से ऊपर उठकर किए गए कार्य से होता है।

प्रभु महावीर के समाधान से गणधर गौतम इन्द्रभूति का समाधान हो गया। इससे भी सिद्ध होता है कि तिर्यंच भी पूर्वजन्म याद आने पर धर्म-आराधना कर सकते हैं।

प्रभु महावीर ने कहा-"थोड़ी सी धर्म-आराधना जीव के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है।"

उन्नीसवां वर्ष

वर्षावास सम्पन्न कर प्रभु महावीर धर्म-प्रचार करने के लिए कुछ समय राजगृह में रहे। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का परम भक्त था। जीवन में शुरु के दिनों में वह कुछ समय बौद्ध भिक्षुओं के संपर्क में आया था पर फिर अनाथी मुनि की घटना व रानी चेलना ने उसे जैन राजा बना दिया। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह दूसरे धर्मों को द्वेषभाव से देखता था। वह सभी धर्म का अहिंसक ढंग से सम्मान करता था।

जैनधर्म में किसी को लालच देकर जैन बनाने की परम्परा को कभी तीर्थंकरों ने स्वीकार नहीं किया। जैनधर्म गुणों की पूजा करता है। वे गुण हैं-अहिंसा, संयम व तप। जहां पूर्वाग्रह नहीं, मिथ्यात्व नहीं, पाप नहीं, वही जैनधर्म की दृष्टि से सच्चा धर्म है। जैन आत्मा से परमात्मा बनने की यात्रा का नाम है।

राजा श्रेणिक की जिज्ञासा

प्रभु महावीर राजगृही नगरी में विराजमान थे। गुणशील चैत्य में प्रभु महावीर की धर्मसभा में जिनवाणी की अखण्ड धारा चल रही थी। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर का प्रवचन सुन रहा था। तभी एक विचित्र घटना ने राजा श्रेणिक में कई जिज्ञासाएं उत्पन्न कर दीं, जिसे प्रभु महावीर ने बाद में शांत किया। उसी सभा में एक बूढ़ा कोढ़ी आया। फटे पुराने वस्त्रों और बीमारी ने उसका बुरा हाल कर रखा था। आते ही उसने इधर-उधर की बातें कीं। राजा श्रेणिक, अभयकुमार और प्रभु महावीर को छींक आई।

फिर उस पुरुष ने राजा श्रेणिक को संबोधित करते हुए कहा-"तुम चिरकाल तक जीओ।"

लोग हैरान थे कि कैसा व्यक्ति है जो प्रभु महावीर की ओर पीठ कर राजा को नमस्कार कर रहा है।

फिर उसने प्रभु महावीर की ओर देखा। नमस्कार करते हुए बोला-"तुम शीघ्र ही क्यों नहीं मर जाते?"

इस वृद्ध कुष्टि की बात सुनकर सारी धर्मसभा में तहलका मच गया। राजा श्रेणिक क्रोधित होने लगे। पर यह तो प्रभु महावीर का समवसरण था, जहां शेर और बकरी एक घाट पर जल ग्रहण करते थे। यहां कौन, किसे रोकने का अधिकार रखता था? सबको कुछ भी कहने का अधिकार था।

वृद्ध कुष्टि ने अभयकुमार को संबोधित करते हुए कहा- "तुम चाहे जीओ, चाहे मरो।"

लोगों का कुतूहल बढ़ता जा रहा था। वहां एक कसाई काल शौकरिक भी बैठा था। उसे देखते ही वृद्ध कुष्टि ने कहा-"तुम न तो मरो, न जीओ।"

इस वृद्ध कुष्टि की बात भी किसी की समझ में नहीं आ रही थी। सारी सभा उसके प्रभु महावीर के प्रति अभद्र व्यवहार से दुःखी थी।

पर शीघ्र ही वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। राजा श्रेणिक ने पूछा-"प्रभु! यह वृद्ध कुष्टि कौन था, जो आपके प्रति भरी सभा में अभद्र शब्दों का प्रयोग करके गया है?"

प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए कहा- "राजन्! इस सभा में आया वृद्ध कुष्टि कोई मनुष्य नहीं था, यह तो देव था। इसने जो कहा है इस कटु सत्य को तुम समझ नहीं पाए। इसने हमारे बारे में जो भविष्यवाणी की है यह सब अमर सत्य है। यह कर्म गति का फल है।"

प्रभु द्वारा स्पष्टीकरण

हे राजन्! उस वृद्ध ने तुमसे कहा- "जीते रहो।" इस बात में परम रहस्य छिपा है। इसका अर्थ है इस जन्म में तुम मगध के सम्राट बने और धन, सम्पदा, परिवार के स्वामी हो। तुम जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन इस संसार में कोई कष्ट नहीं है। पर आगामी भव में तुम्हारे लिए नरक तैयार है। वहां भयंकर कष्ट है, दारुण वेदना है। यहां फूल है तो अगले जन्म में शूल है। इसलिए जब तक जीवित हो, तभी तक तुम्हारे लिए अच्छा है। तुम्हारा मरण अच्छा नहीं।"

फिर उसने मुझे कहा-"तुम मरो।" राजन्! यह जन्म मेरा आखिरी जन्म है, घनघातीय कर्मों का नाश मैंने कर दिया है। मैं केवलज्ञान द्वारा अर्हत् अवस्था में हूं। अंतिम अवस्था अर्हत् अवस्था नहीं, जन्म-मरण से मुक्त अवस्था है, जिसे सिद्ध गति कहते हैं। फिर आत्मा, परमात्मा बन जाती है। आवागमन, जन्म, जरा, व्याधि की समाप्ति हो जाती है। यही पूर्ण अवस्था है। इसलिए मेरी देह को बन्धन मानते हुए मुझे मरने को कहा है।

राजन्! उस देव ने अभयकुमार से कहा-"तुम चाहे जीओ, चाहे मरो।" अभय कुमार का जीवन में भोग के साथ त्याग भी है। इसका जीवन भ्रमर के समान है, जो रस लेते हुए भी डूबता नहीं इसलिए इसका जीवन यहां भी सुखी है। भय और शोक से रहित है। अगला जीवन भी भव्य है। यह यहां से मरकर देव बनेगा। इसका आगामी भव भी भव्य है। लोक में भी इसे सुख है, परलोक में भी यह सुखी रहेगा। इसलिए देव ने कहा- "चाहे जीओ,चाहे मरो।"

मेरी सभा में कालशोरिक के लिए उसने कहा- "न मरो न जीओ।" इसका अर्थ यह है कि इसका जीवन यहां भी दरिद्रता और अंधकार से व्याप्त है। वह हिंसा और क्रूरता की ज्वलंत प्रतिमा है। ऐसी परिस्थिति में आगामी भव में सुख किस प्रकार पा सकता है? वह जब तक जीता रहेगा, तब तक हिंसा करता रहेगा और मरकर नरक में पैदा होगा। इसे यहां भी शांति नहीं और न परलोक इसका सुखी है। इसलिए देव ने कहा-"इसका न मरना अच्छा, न जीना।"

राजा श्रेणिक प्रभु के समाधान सुनकर नतमस्तक हो गया पर साथ में अपने भविष्य को सुनकर दुःखी हुआ। उसने कहा-"प्रभु! आपका भक्त क्या नरक में जाता है?"

प्रभु महावीर राजा श्रेणिक की भयत्रस्त आत्मा की भाषा को जान चुके थे।

प्रभु महावीर ने कहा- "राजन्! कर्मफल का संबंध जीवात्मा से है। मैं तो स्वयं कर्मबंधन तोड़ने के प्रयत्न में हूं। तू अज्ञानता के कारण कर्मलीला को नहीं समझ रहा। मृग हत्या के कारण तुमने पहले ही नरक आयुष्य बांध लिया है। रही बात मेरी भक्ति की, इसकी उपासना का फल तो तुझे शीघ्र मधुर मिलेगा। जैसे मैं अंतिम तीर्थंकर के रूप में पैदा हुआ हूं, तू भी भविष्य में होने वाली तीर्थंकर परम्परा का प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ बनेगा। पर याद रखो, हर जीव को किए कर्मों का फल भोगना होता है। आगामी भव में तुझे नरक जाना है।"

राजा श्रेणिक जहां अपने नरक-गमन की भविष्यवाणी से दुःखी थे, वहां तीर्थंकर गोत्र बांधने के समाचार से अत्यधिक प्रसन्न हो गए। पर फिर भी उसे प्रभु महावीर पर बहुत भरोसा था, अथाह श्रद्धा थी। उसी श्रद्धावश राजा ने प्रभु महावीर से पूछा-"क्या नरक-गमन को टालने का कोई उपाय है?"

प्रभु महावीर श्रेणिक की अज्ञानता को पहचान रहे थे। उन्होंने राजा श्रेणिक को समझाने के लिए कुछ उपाय बताते हुए कहा-"राजन्! कपिला ब्राह्मणी सुपात्रदान दे तथा कालशोरिक कसाई जीव-हिंसा

का त्याग कर दे तो तुम्हारा नरक टल सकता है।''

आचार्यप्रवर श्री देवेन्द्र मुनि जी ने इस संदर्भ में कहा है- उत्तरवर्ती ग्रंथों में प्रभु महावीर द्वारा दो और उपाय बताने का वर्णन है। वह है- राजा श्रेणिक की दादी मुनियों के दर्शन करे या पुणिया श्रावक एक सामायिक का फल दे।''

दादी द्वारा आंख फोड़ना

नरक-गमन टालने हेतु राजा श्रेणिक महलों में आया। वह अपनी दादी को सरल समझता था। उसने अपनी दादी से भगवान महावीर के दर्शन की प्रार्थना की, पर वह न मानी। उसने स्पष्ट इंकार करते हुए कहा- मैं निर्ग्रंथों के दर्शन नहीं करूंगी।''

राजा श्रेणिक ने एक पालकी बनाई, उसमें दादी को बैठाया और समवसरण में ले गया। दादी ने समवसरण के आने से पहले अपनी दोनों आंखें फोड़ डालीं। नरक टालने का पहला प्रयत्न बेकार गया।

कपिला द्वारा दान देने से इंकार

कपिला ब्राह्मणी चाहे राजा श्रेणिक की दासी थी, पर वह कट्टर ब्राह्मण विचारधारा की समर्थक थी। राजा ने कपिला से कहा-''अगर तुम किसी मुनि को अपने हाथ से दान दे दो, तो मेरा नरक टल जाएगा।''

कपिला ब्राह्मणी ने कहा- ''मैं तो दान का पात्र ब्राह्मण को मानती हूं। इन भिखमंगों को दान कैसे दूं? राजन्! मुझे महावीर की वाणी में कोई विश्वास नहीं।''

कपिला के इंकार करने पर राजा ने और ढंग अपनाया। राजपुरूष किसी मुनि को भिक्षा के लिए ले आए। उधर राजा श्रेणिक ने कपिला के हाथ पर कड़छी बांध दी। मुनिराज जब कपिला के सामने आए, तो कपिला चिल्लाकर कहने लगी-''यह दान मैं नहीं कर रही, राजा श्रेणिक की कड़छी कर रही है।'' मुनिराज ने ज्यों ही यह बात सुनी, मुनिराज बिना भोजन लिए चले गए। राजा श्रेणिक का यह प्रयत्न भी बेकार गया। राजा असमंजस में पड़ चुका था।

कालशोरिक को कैद करना

राजा श्रेणिक कालशौकरिक कसाई के पास गया। उसने कालशौकरिक को कहा-''देखो भाई! तुम एक दिन के लिए ५०० भैंसे मारने बंद कर दो। मैं तुम्हें उपयोगी इनाम दूंगा और तुम्हारा नुक्सान भी पूरा कर दूंगा। तुम्हारे इस प्रयत्न से मेरा नरक गमन टल जाएगा।''

कालशौकरिक राजा श्रेणिक को देखकर दंग रह गया। उसने कहा- ''महाराज! तुम्हारे नरक-स्वर्ग के चक्कर में हम अपना धंधा कैसे चौपट कर दें? फिर मैं तो इस बात को व्यर्थ समझता हूं। मैं अपना धंधा चौपट नहीं करूंगा।''

कालशौकरिक के इंकार करने पर उसे कैद में डाल दिया गया। उसे अंधकूप में रखा गया ताकि वह एक दिन किसी प्रकार के जीव का वध न कर सके। पर कालशौकरिक वहां बैठा भाव-हिंसा करता रहा। वह चित्रमय भैंसा बनाता और उसे काट देता। इस प्रकार उसने कुएं की दीवारें ५०० भैंसे मारकर भर डालीं।

राजा श्रेणिक निश्चिन्त हो गया कि उसका नरक टल गया है। सुबह हुई राजा श्रेणिक प्रभु महावीर

के दर्शन करने आया। फिस उसने कहा-"प्रभु! मैंने आपके बताए उपायों में से एक पूरा कर दिया है। मैंने कालशौकरिक कसाई को जीव हत्या से मना कर दिया है।"

प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक के मनोगत भावों को समझाते हुए कहा-"राजन्! जबर्दस्ती से किसी से अहिंसा का पालन नहीं करवाया जा सकता। बात भाव व मन बदलने से बनती है। उसके मन में हिंसा के भाव अभी भी विद्यमान हैं। चाहे तूने उसे बंदी बना अंधकूप में डाल दिया है, पर उसने आज भी ५०० चित्रमय भैंसों की हत्या की है, जो भाव हिंसा है।" राजा श्रेणिक ने वापस बंदीगृह आकर देखा तो प्रभु महावीर का कथन सत्य था।

पूणिया श्रावक की सामायिक

राजा श्रेणिक के नरक-गमन के पहले प्रयत्न विफल हो गए। वह हताश हो गया। वह नरक के भय से इतना डरा हुआ था कि वह पूणिया श्रावक की कुटिया में पहुंचा। पूणिया श्रावक आर्थिक दृष्टि से तो गरीब था, पर आध्यात्मिक दृष्टि से उससे बड़ा अमीर कोई न था। पूणिया और उसकी धर्मपत्नी दोनों सूत कातकर गुजारा करते थे। प्रामाणिक अन्न द्वारा जीवन की गाड़ी चलाते थे। वे काम के अलावा ज्यादा समय श्रावक के एक प्रमुख शिक्षा व्रत सामायिक में गुजारते।

आज मगध सम्राट् श्रेणिक उस पूणिया श्रावक की झोंपड़ी तक स्वयं पहुंचा था। वह यही नहीं समझ पा रहा था कि कर्म का फल नहीं बदलता। उसे प्रभु महावीर पर अथाह भरोसा था। उसके सम्यक्त्व की स्वयं महावीर ने इतनी प्रशंसा की थी। स्वयं एक देव-परीक्षा में श्रेणिक उत्तीर्ण हुआ था। सम्राट् श्रेणिक को अपनी झोपड़ी में आया देख पूणिया श्रावक को कुछ आश्चर्य हुआ। किसी राजा का गरीब की झोंपड़ी तक पहुंचना कम ही देखा गया है।

राजा श्रेणिक अपनी माया के अहंकार में डूबा हुआ, एक सामायिक की कीमत देने को तैयार हो गया था। अज्ञानतावश वह यह नहीं जान पाया था कि सामायिक खरीदने-बेचने की चीज नहीं है। साधना बेची नहीं जाती, न ही कोई दे सकता है। पर श्रेणिक अहंकार के हाथी पर चढ़ा हुआ था। हमेशा धनवान भक्ति से ज्यादा धन को महत्व देता है। वह धन से धर्म खरीदना चाहता है पर हमेशा असफल रहता है क्योंकि धर्म, धन का नाम नहीं भाव दशा का नाम है जो खरीदा नहीं जा सकता, स्वयं घटित होता है।

पूणिया श्रावक ने राजा को प्रणाम किया फिर यथा स्थान राजा को बैठाकर हाथ जोड़कर आने का कारण पूछा। राजा श्रेणिक ने कहा-"आज मैं तेरे दर पर आया हूं। प्रभु महावीर ने मेरे नरक गमन टालने का एक यत्न बताया है।" पूणिया ने कहा-"राजन्! मेरे योग्य सेवा हो तो बताएं। मैं इस संदर्भ में क्या कर सकता हूं?"

राजा श्रेणिक ने मन की बात स्पष्ट करते हुए कहा- "मैं तुम्हारी एक सामायिक खरीदना चाहता हूं। इसी सामायिक के फल से मेरा नरक गमन टल जाएगा। मैं इसका मनचाहा मूल्य देने को तैयार हूं।"

मगध का सम्राट् आज एक सामान्य दरिद्री कहे जाने वाले पूणिया की झोंपड़ी में आकर एक सामायिक खरीदने आया था। पूणिया श्रावक ने राजा की बात सुनी, उसे राजा की बात में अज्ञानता व अहंकार की झलक स्पष्ट नजर आ रही थी।

पूणिया श्रावक ने कहा- "राजन्! सामायिक का सौदा मैंने पहले कभी नहीं किया। मेरे लिए यह नई

बात है जिसे आपने सामायिक खरीदने को कहा है, वही इसकी कीमत भी जानते होंगे। आप उनसे कीमत पूछ लीजिए। मैं सहर्ष सामायिक बेचने को तैयार हूं।''

राजा श्रेणिक अज्ञानता के दलदल में फंस चुका था। वह यह बात सुनकर प्रभु महावीर के पास आया। उसने प्रभु महावीर से प्रार्थना की- ''भगवन्! पूणिया श्रावक सामायिक बेचने को तैयार है। वह एक सामायिक का मूल्य नहीं जानता। कृपया आप ही एक सामायिक का मूल्य बताइए। मैं समस्त राज्य देकर भी सामायिक ले लूंगा।''

प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक को समझाते हुए कहा- ''देवानुप्रिय! तुम भौतिक वैभव की तुलना सामायिक से करना चाहते हो? यदि सुमेरू की तरह स्वर्ण, चांदी, हीरे, पन्ने, माणक्य और मोतियों के अम्बार भी लगा दो, तो भी सामायिक का मूल्य तो क्या, सामायिक की दलाली भी नहीं हो सकती है। राजन्! मैं पूछता हूं कि एक व्यक्ति मृत्यु शैय्या पर पड़ा जीवन की अंतिम सांसे गिन रहा है, क्या संसार की सारी सम्पदा उसे मरने से बचा सकती है?''

राजा श्रेणिक- ''प्रभु! यह बात तो असंभव है।''

प्रभु महावीर- तुम्हारी भौतिक सम्पदा से बढ़कर जीवन का मूल्य है। एक क्षण का जीवन भी मणि-मुक्ताओं से नहीं खरीद सकते। क्योंकि माणिक्य-मक्ता तो भौतिक सम्पदा के सिवा कुछ नहीं है। सामायिक तो आत्म भाव है। यह अंदर की साधना है। समता की साधना है। सामायिक आत्मा में घटित होती है, खरीदी नहीं जा सकती। राग-द्वेष की विषमता से चित्त को दूर कर जन से जिन बनना, यही सामायिक का आध्यात्मिक मूल्य है। उसे प्राप्त करने के लिए मन को स्फटिक की भांति निर्मल बनाना होता है। समत्व में स्थिर करना होता है।

प्रभु महावीर की वाणी को श्रद्धापूर्वक राजा श्रेणिक ने सुना और सामायिक के वास्तविक मूल्य को पहचाना। धन से सामायिक खरीदने का उसका अहंकार नष्ट हो गया।[३]

सारांश यह है कि ये बातें न होने वाली थीं। इसलिए सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने श्रेणिक की अज्ञानता मिटाने के लिए यह बात कही थी। क्योंकि प्रभु महावीर जानते थे कि नरक का बंध नहीं टाला जा सकता। राजा श्रेणिक बिम्बसार को प्रतिबोध देने के लिए ऐसा किया गया।

राजा श्रेणिक के जीवन की कुछ घटनाएं यहां वर्णन की जा रही हैं जिनका प्रभु महावीर से संबंध है।

राजर्षि प्रसन्नचन्द्र

एक समय की बात है। राजा श्रेणिक प्रभु महावीर के दर्शन को जा रहा था। उसने प्रभु महावीर की वन्दना करने के पश्चात् पूछा-''प्रभु! मैंने रास्ते में एक तपस्वी मुनि को देखा है। वह बहुत उग्र साधना कर रहे थे। सूर्य की ओर ऊंची-ऊंची भुजाएं फैली हुई थी। मेरू की तरह अडोल थे। ध्यान में तल्लीन थे। नासाग्र पर दृष्टि केन्द्रित थी। मुख पर अद्भुत समता व शान्ति झलक रही थी। वह इतना उग्र तपस्वी है। मुझे बताने का कष्ट करें कि वह किस उत्तम गति को प्राप्त होगा?''

प्रभु महावीर ने कहा- ''राजन्! तूने जिस मुनि के दर्शन किए हैं, अगर वह अभी कालधर्म को प्राप्त हो तो मरकर सातवीं नरक में जाएगा।''

राजा श्रेणिक को प्रभु महावीर की बात पर आश्चर्य हुआ। उसे लगा कि इतनी कठोर साधना वह कर रहा है और इस साधना का अंत सातवीं नरक।

प्रभु महावीर ने फरमाया-"मैंने जो पहले कहा, वह भी ठीक था पर अगर अब वह मरे तो छठी नरक में जाएगा।"

इस प्रकार प्रभु महावीर ने उस मुनि के भव की पांचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी व प्रथम नरक तक की भविष्यवाणी कर डाली। उधर राजा श्रेणिक की जिज्ञासा बढ़ती गई। उसने पुनः पूछा- "प्रभु! अब वह किस गति को प्राप्त करेगा?"

भगवान महावीर बोले-"राजन्! तूने उस मुनि की बाह्य साधना देखी है, मन के उतार चढ़ाव नहीं देखे। पहले वह बाह्यमुखी था अब वह अंतर्मुखी होने के कारण स्वर्ग की ओर प्रयाण करने लगा है। यदि वह इसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाए, तो सौधर्मकल्प स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव बनेगा।"

पर उसकी आत्मा अब चरमोत्कर्ष अवस्था की ओर बढ़ रही है। वह बाह्य कल्प से आगे बढ़ गया है। एक ओर मुनि का आत्म आरोहण क्रम चालू था तो दूसरी ओर राजा श्रेणिक के प्रश्न और प्रभु के उत्तर भी।

राजा श्रेणिक ने पुनः प्रश्न किया- "प्रभु महावीर! अब इसकी आत्मा किस स्थिति में है?"

"वह कल्प और ग्रैवयक देव भूमि पार कर सर्वार्थसिद्ध भूमि पर पहुंच गया है।" प्रभु महावीर ने उत्तर दिया।

कुछ समय के बाद आकाश में देव-दुन्दुभियां बजने लगीं। देव-देवियां पुष्प-वर्षा करते हुए केवली को प्रणाम करने उतरे। राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को केवलज्ञान पैदा हो गया था।

प्रभु महावीर ने कहा- अब उस प्रसन्नचन्द्र मुनि को सिद्ध अवस्था देने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। देव उसी की वन्दना करने आ रहे हैं। अब यह मन के संकल्पों पर विजय प्राप्त कर चुका है। इसका केवलज्ञान महोत्सव मनाया जा रहा है।"[३४]

राजा श्रेणिक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई जिसे सर्वज्ञ प्रभु महावीर समझ गए।

राजा श्रेणिक बोला- "प्रभु! मैं आपकी बात का रहस्य नहीं समझ पा रहा हूं। एक ही क्षण में जो जीव नरक में विचरण कर रहा था कैसे वह स्वर्ग और मोक्ष तक को प्राप्त कर गया, इसका क्या रहस्य है? इसे समझाने की अनुकम्पा करें।"

राजन्! जिस मुनि को तूने देखा है उसका नाम राजर्षि प्रसन्नचन्द्र है। वह ध्यानावस्था में स्थित था। तूने उस मुनि को प्रणाम किया और आगे निकल आए। तुम्हारे पीछे तुम्हारे दो सैनिक वार्त्तालाप कर रहे थे, जिसे इस मुनि ने सुन लिया। वह कह रहे थे- "देखो! यह प्रसन्नचन्द्र राजा अपने छोटे से पुत्र को राजगद्दी पर बैठाकर स्वयं साधु बन गया। अब शत्रु राजा ने उस प्रसन्नचन्द्र के पुत्र पर आक्रमण कर दिया है। युद्ध हो रहा है। प्रसन्नचन्द्र राजा का पुत्र कुछ समय बाद भाग जाएगा। यह राज्य समाप्त हो जाएगा।

इसी बात को सुनकर यह मन ही मन में भाव युद्ध करने लगा। जब तुम गुजरे थे, यह स्वयं को युद्ध के मैदान में पा रहा था। इसने राजमुकुट बांधकर अनेक हाथियों की, घोड़ों की, मनुष्यों की भाव हिंसा (हत्या) मन ही मन में कर डाली। यह भूल चुका था कि अब राजा नहीं रहा, मुनि है।

विचारों का युद्ध चल रहा था। काल्पनिक शत्रु को मारने की योजना चल रही थी। प्रसन्नचन्द्र ने अपने सभी शस्त्र समाप्त कर दिए थे। जब शस्त्र समाप्त हो गए तो सिर के मुकुट से ही प्रहार करने का विचार करने लगा। पर ज्यों ही हाथ सिर पर गया, वहां मुकुट कहां था वहां तो मुण्डित सिर था।

मन में उसी क्षण विचार आया मैं मुकुटधारी राजा नहीं हूं किन्तु नग्न सिर वाला मुण्डित साधु हूं।

"मैं कहां भटक गया? मेरा शत्रु कौन है? कौन सा युद्ध-क्षेत्र है?"

मन की दिशा बदली। युद्ध-क्षेत्र धर्म-क्षेत्र में बदल गया। मन की धारा बदली। युद्ध तब भी चल रहा था, पर शत्रु बदल गए थे। अब दूसरों से नहीं, अपने से युद्ध चल रहा था। वह अपने विकारों और वासनाओं का संहार कर रहा था। ज्यों-ज्यों तुम्हारे प्रश्न चल रहे थे, त्यों-त्यों वह आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की ओर कदम बढ़ा रहा था। नरकों से निकलता-निकलता वह शुभ भाव के कारण स्वर्ग की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। पर यह स्वर्ग की सीढ़ियों को पार करता हुआ अब मोक्ष के द्वार पर आ पहुंचा। जन्म-जन्म का भूला भटका प्राणी अब केवलज्ञानी बन गया है।

राजा श्रेणिक चिंतन करता रहा मन की विचित्र स्थिति पर। मन जब अधोमुखी हुआ, तो सातवीं नरक तक पहुंच गया और ऊर्ध्वमुखी बना तो सिद्धि और मुक्ति का द्वार खुल गया। श्रेणिक राजा ने श्रद्धा से गद्‌गद होकर प्रभु महावीर को वन्दन किया और अपने महलों की ओर लौट आया।

श्रेणिक के सम्यक्त्व की परीक्षा

महाराजा श्रेणिक के प्रभु महावीर के प्रति समर्पण की चर्चा धरती पर ही नहीं, स्वर्ग में भी होने लगी। प्रभु महावीर ने उसे क्षायिक सम्यक्त्व का स्वामी बताया। जब प्रभु महावीर ने राजा श्रेणिक को उसका भविष्य बताया था तो उसे टालने की चिंता में वह उपाय करने के लिए राजगृह महलों की ओर लौट रहा था, तभी एक देव ने मायाजाल बिछाया।

मुनि द्वारा मछली पकड़ना

राजा श्रेणिक ने देखा कि एक मुनि हाथ में जाल लिए हुए है और नदी से मछलियां पकड़ रहा है। राजा श्रेणिक उस मायाधारी मुनि को देखकर रुके और कहा-"मुनिराज! यह कार्य हिंसक कार्य है। तुम्हें ऐसा हिंसक कार्य नहीं करना चाहिए। इससे लोगों में धर्म की निंदा होती है।"

मुनि बोला-"राजन्! मैं क्या करूं। मैं तो बचपन से मांसाहारी हूं। मैं क्षत्रिय हूं। शिकार, मांस-मदिरा का त्याग मैं नहीं कर सकता। वैसे प्रभु महावीर के और साधु भी लुक-छिपकर मेरी तरह मांस मदिरा का सेवन करते हैं। उनके भक्त उन्हें यह सब लाकर देते हैं। मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं सो मैं स्वयं मछलियां पकड़कर अपनी मांस-लिप्सा पूरी करता हूं।"

राजा श्रेणिक-"आप दूसरे मुनियों पर व्यर्थ दोष मत लगाएं। अपनी कमजोरी को किसी और के सिर पर मढ़ना अच्छा नहीं।" फिर मुनि ने जो आगे बताया, वह इससे भी भयंकर था। उसने बताया कि- "मैं मछली के साथ मदिरा पीता हूं। मदिरा पीकर उसका मन बहक जाता है तो कभी कभी वेश्या के यहां भी जाता हूं। वेश्या को धन चाहिए, इसके लिए कभी-कभी चोरी भी करनी पड़ती है, फिर जुआ भी धन के बिना खेलना असंभव है। सो चोरी करता हूं।"

राजा श्रेणिक ने इस मायाधारी मुनि की बातों को सुना, पर अपने सम्यक्त्व से विचलित नहीं हुआ।

सगर्भा साध्वी

राजा श्रेणिक अभी कुछ ही दूर गया था कि एक सगर्भा साध्वी देखी। राजा श्रेणिक वहां रुका। साध्वी सगर्भा ही नहीं थी, उसने हार-श्रृंगार कर रखा था। राजा ने साध्वी से कहा-"आर्या! आपने यह क्या कर डाला? यदि आपका मन इतना दुर्बल था तो संयम ही क्यों लिया? चलो, जो हुआ सो हुआ। अब

आप मेरे घर पधारो। मैं आपको प्रसवकाल तक संभालता हूं। प्रसव होने के पश्चात् पुनः आलोचना कर संयममार्ग पर स्थिर हो जाना।''

राजा श्रेणिक के इस कल्याणकारी कथन का साध्वी पर विपरीत असर हुआ। उसने क्रोधित होते हुए कहा- ''राजन्! अपनी सहायता अपने पास रखो। भगवान महावीर के संघ में कौन दुराचारी नहीं? लुक-छिपकर सभी साध्वियां कामभोगों का सेवन करती हैं। मुझे किसी की चिंता नहीं।''

राजा श्रेणिक को साध्वी के इस कथन पर क्रोध आ गया। उसने साध्वी से कहा-''अपनी कमजोरी छिपाने के लिए दूसरों पर दोष मढ़ना कहां की समझदारी है? प्रभु महावीर पवित्र हैं। उनका संघ पवित्र तीर्थ है। तुम्हारे सभी दोष मिथ्या हैं। हां, मैं इस मुसीबत से तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूं।''

पर यह तो देव-माया थी, जो कुछ समय में सिमट गई। स्वर्ग के देव दुर्दरांक की परीक्षा थी, जिस पर राजा श्रेणिक खरे उतरे। देव ने प्रत्यक्ष होकर राजा श्रेणिक की संघ-भक्ति की प्रशंसा की। उन्हें दिव्य हार और दो मिट्टी के गोले दिए जो राजा ने अभयकुमार की माता नंदा और रानी चेलना को दे दिया।

इस दिव्य हार का नाम वंकचूल था। एक गोले में देवदूष्य वस्त्र व दूसरे में से दिव्य कुण्डल निकले जो रानियों की कलह का कारण बने। पर राजा श्रेणिक अपनी भक्ति में मग्न थे। वह परीक्षा में खरे उतरे।

महाराजा श्रेणिक के परिवार में धर्म-प्रभावना

महाराजा श्रेणिक मगध के सम्राट् ही नहीं थे, प्रभु महावीर के परम भक्त थे। चाहे वह वृद्ध हो चुके थे, पर उनके मन में निर्ग्रन्थों के प्रति अथाह श्रद्धा थी। उसी श्रद्धा के वशीभूत उन्होंने एक बार राज-परिवार, सामन्तों और मन्त्रियों में यह उद्घोषणा की-''जो कोई भी प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण करेगा, मैं उसे रोकूंगा नहीं।[३५] वह सहर्ष दीक्षा स्वीकार करे। यदि उसके पीछे कोई पारिवारिक चिंता है, उसकी चिंता की जिम्मेदारी का वहन मैं स्वयं करूंगा। जिसे साधु या साध्वी बनना है, अपनी आत्मा का कल्याण करना है, वह प्रभु महावीर का शिष्य बन जाए।'' इस उद्घोषणा का अच्छा प्रभाव राज परिवार पर भी पड़ा। बहुत से नागरिकों ने प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। राजा श्रेणिक के २३ पुत्रों ने प्रभु महावीर के चरणों में निर्ग्रन्थ धर्म में प्रव्रज्या स्वीकार की, जिनके मंगलमय नाम इस प्रकार हैं- (१) जालि, (२) मयालि, (३) उपालि, (४) पुरुषसेन, (५) वारिषेण, (६) दीर्घदन्त, (७) लष्टदंत, (८) शुद्धदंत, (९) वेहास, (१०) अभयकुमार,[३६] (११) दीर्घसेन, (१२) महसेन, (१३) लष्टदंत, (१४) गूढ़दन्त, (१५) शुद्धदंत, (१६) हल्ल, (१७) द्रुम, (१८) द्रुमसेन, (१९) महाद्रुमसेन, (२०) सिंह, (२१) सिंहसेन, (२२) महासिंहसेन, (२३) पूर्णभद्र।[३७]

महाराजा श्रेणिक की तेरह रानियों ने भी प्रव्रज्या स्वीकार की, जिनके शुभ नाम इस प्रकार हैं- (१) नन्दा, (२) नंदमती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दिसेणिया, (५) मरुया, (६) सुमरिया, (७) महामरुता, (८) मरुदेवा, (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमना, (१३) भूतदत्ता।

सभी राजकुमारों ने ग्यारह अंगों का स्वाध्याय किया। तप द्वारा आत्मा को शुद्ध किया। इसी तरह सभी रानियों ने उत्कृष्ट तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया।[३८]

संसार के इतिहास में एक ही परिवार से इतने राजकुमार, रानियों की दीक्षा का कम ही उदाहरण मिलता है। महलों में पले इन राजकुमार व रानियों का, संसार के भोगों को त्यागकर साधु-साध्वी का जीवन ग्रहण करना प्रभु महावीर के वैराग्यमय उपदेशों का प्रभाव कहा जा सकता है।

महासती रानी चेलना

एक बार प्रभु महावीर ने कहा था कि राजा चेटक की सभी पुत्रियां शील गुण से सम्पन्न हैं। राजा चेटक की सभी पुत्रियां उस समय के प्रसिद्ध राजाओं से विवाहित थीं। एक बार राजा श्रेणिक व रानी चेलना प्रभु महावीर के दर्शन को जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक तरूण मुनि को देखा, जो कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ थे। ठण्ड का मौसम था। रानी चेलना के मन पर उस मुनि के तप का बहुत प्रभाव पड़ा था। श्रद्धावश उसने नतमस्तक हो मुनि को प्रणाम किया। प्रभु महावीर के उपदेश सुनकर वह राजा सहित घर लौटी। पर उस मुनि का ध्यान मन में बना रहा।

रात्रि की ठण्ड बढ़ चुकी थी। राजा रानी महलों में सुखपूर्वक सोए हुए थे पर रानी के मन पर मुनि की कठोर तपस्या का महाप्रभाव था। अचानक आधी रात के समय लिहाफ से रानी का हाथ बाहर निकला। अर्ध-जाग्रत और अर्ध सुप्त अवस्था में रानी बड़बड़ायी-"ऐसी ठण्ड में उनका जाने क्या हाल होगा?"

इधर राजा श्रेणिक भी कुछ जाग रहे थे। उन्होंने रानी के मुंह से यह वाक्य सुना, तो संशय में पड़ गए। उन्होंने सोचा-"जरूर रानी किसी पर-पुरूष का चिन्तन कर रही है, जो इस समय किसी मुसीबत में फंसा है।"

राजा श्रेणिक को रानी से ही नहीं, समस्त स्त्री जाति से घृणा हो गई। सुबह हुई तो राजा ने अपने मंत्री अभय को बुलाकर आज्ञा दी- "मेरे अन्तःपुर में आग लगा दो। चेलना का कक्ष फूंक डालो। मैं अब अपने निवास को भस्म देखना चाहता हूं।"

अभय मन से परेशान था पर वह राजाज्ञा के सामने क्या कर सकता था? राजा की आज्ञा का पालन करना पड़ रहा था। राजा श्रेणिक आज्ञा प्रदान कर स्वयं प्रभु महावीर के दर्शन करने शीघ्रता से गुणशील चैत्य पहुंचा। अन्तर्यामी प्रभु महावीर से क्या छिपा था? उन्होंने भरी सभा में राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुए सारी घटना ज्यों की त्यों कह डाली। फिर राजा श्रेणिक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा- मैंने एक बार कहा था कि राजा चेटक की सभी पुत्रियां पतिव्रता हैं, वह सत्य है। पर तूने धुएं को बादल समझकर नादानी की है। चेलना तो ठण्ड में तप कर रहे मुनि की तपस्या का चिन्तन कर रही थी कि इस ठण्ड में वह मुनि कैसे खड़ा होगा, जबकि मेरा हाथ लिहाफ से निकलते मुझे ठण्ड लग रही है, तूने इस चिन्तन को पर-पुरूष चिन्तन समझा, जो तुम्हारी विकृत मनोदशा थी और इसी कारण तुम अभय को महलों में आग लगाने की आज्ञा प्रदान कर मेरे प्रवचन में आए हो। राजा! तुम संशयग्रस्त हो। सत्य को जाने बिना शीलवती पत्नी पर संशय करते हो।"

राजा श्रेणिक को अपनी भूल का अहसास हुआ। उसने प्रभु महावीर से कहा-"प्रभु! आपका वचन सत्य है। मैं शीघ्रता से अभय को ऐसा अकार्य करने से रोकता हूं।"

राजा महलों की ओर बढ़ा। भयंकर लपटें उसके महलों को जला रही थीं। पास आकर उसने अभय से पूछा-"क्या तूने मेरी आज्ञा का पालन कर दिया?"

अभय ने कहा- "हां पिता जी! मैंने महलों को आग लगा दी?"

राजा श्रेणिक ने कहा-"मेरी मूर्खता के कारण यह सब कार्य हुआ।" राजा को बड़ा पश्चाताप हुआ। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात् होश आने पर अभयकुमार ने बताया-

"महाराज! मैंने पुरानी गजशाला, जो महलों के करीब पड़ती थी उसे आग लगाई है। आपने मेरी

सती माता पर शक किया। सतियों पर शंका एक पुत्र कैसे कर सकता है?''

श्रेणिक ने अभय को छाती से लगाया और चेलना से माफी मांगी।

आर्द्रक मुनि की अन्य मतों के आचार्यों से धर्मचर्चा

द्वितीय अंग सूत्रकृतांग सूत्र में आर्द्रककुमार का वर्णन आया है। वह प्रभु महावीर का प्रमुख भक्त था। उसकी भक्ति का कारण बना- मगध का प्रधान मंत्री व राजा श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार।

आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर (ईरान) का राजकुमार था।[३९] एक बार उसके पिता ने राजा श्रेणिक को उपहार भेजे। आर्द्रककुमार ने श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार को उपहार भेजे।

पुनः राजगृह में भी उसके बदले उपहार भेजे गए। अभयकुमार की ओर से जैनधर्म के धार्मिक उपकरण राजकुमार के लिए भेजे गए। उसे प्राप्त कर आर्द्रककुमार प्रतिबुद्ध हुआ। अब जाति-स्मरण ज्ञान उसे प्राप्त हो चुका था। उसे याद आया कि पूर्वजन्म में वह यह सब उपकरण देख चुका है।

उसने तत्काल अपने देश को छोड़कर प्रभु महावीर के चरणों में दीक्षा लेने का निर्णय किया। उसके साथ ५०० सिपाही उसकी रक्षा को थे, जो पिता ने भेजे थे। वह राजगृही आ रहा था, तब उसे भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायी मिले, जिन्होंने उससे लम्बी धर्मचर्चाएं कीं।

इन धर्मचर्चाओं से उस समय के दार्शनिक परम्पराओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अगली पंक्तियों में हम इसी प्रकरण को दे रहे हैं। इससे आर्द्रककुमार के ज्ञान का भी पता चलता है। आर्द्रककुमार विदेशी था। डा. ज्योतिप्रसाद जैन ने उसे ईराक सम्राट् कुरुण का पुत्र बताया है।[४०]

लगता है आर्द्रककुमार के माध्यम से जिनधर्म अरब भूखण्ड में प्रभु महावीर के समय फैल चुका था।

आर्द्रक- गोशालक संवाद

उस समय भगवान के शिष्य आर्द्रक मुनि भगवान को वन्दन करने के लिए गुणशील में जा रहे थे। रास्ते में उन्हें गोशालक मिला। आर्द्रक को वहीं मार्ग में रोककर वह बोला-''आर्द्रक! जरा सुन, तुझे एक पुराना इतिहास सुनाता हूं।''

आर्द्रक- ''कहिए।''

गोशालक-''तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण महावीर पहले एकान्तविहारी थे और अब ये साधुओं की मण्डलियों को इकट्ठा करके उनके आगे व्याख्यानों की झड़ियां लगाते हैं।''

आर्द्रक-''हां, जानता हूं, पर आप कहना क्या चाहते हैं?''

गोशालक-''मेरा तात्पर्य यह है तुम्हारा धर्माचार्य अस्थिर-चित्त है। पहले वे एकान्त में रहते, एकान्त में विचरते और सभी तरह की खटपटों से दूर रहते थे। अब वे साधुओं की मण्डली में बैठकर मनोरंजक उपदेश देते हैं। क्या इस प्रकार लोकरंजन करके वे अपनी आजीविका नहीं चला रहे हैं? इस प्रकार की प्रवृत्ति से इनके पूर्वापर जीवन में विरोध खड़ा होता है, इसका भी इन्हें ख्याल नहीं। यदि एकान्तविहार में श्रमणधर्म था तो अब वे श्रमणधर्म से विमुख हैं और यदि इनका वर्तमान जीवन ही यथार्थ माना जाए तो पहला जीवन निरर्थक था, यह सिद्ध होगा। भद्र! तुम्हारे गुरु की पूर्वापर विरुद्ध जीवनचर्या किसी भी तरह निर्दोष नहीं कही जा सकती। जहां तक मैं समझता हूं, महावीर का वह जीवन ही यथार्थ था जबकि मैं उनके साथ था और वे निस्संग भाव से एकान्तवास का आश्रय लिए हुए थे। अब वे एकान्तविहार से ऊब कर सभा में बैठते हैं और उपदेश के बहाने लोगों को इकट्ठा करके अपनी आजीविका चलाते हैं। इन